A National, Registered & Refereed Monthly Journal : Sanskrit Literature
Since March 2002
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 70-72
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

वेद कालीन 'अर्थ' चिन्तन : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र वेद कालीन 'अर्थ' चिन्तन से सम्बंधित है। अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि वेदकालीन समाज पूर्ण रुप से आर्थिक क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन पर ही निर्भर था। ऐसा कहना ठीक न होगा, यद्यपि यह बात पूर्णतः सत्य है कि मानव सभ्यता का विकास अधिक नहीं हुआ था, तथापि वेदकालीन आर्यों को व्यापार का भी ज्ञान था और व्यापार के माध्यम से उन्होंने धन कमाना सीख लिया था। वैदिक काल में अर्थव्यवस्था का नियोजन यापार के माध्यम से भी होता था। कृषि उत्पात देश में निर्मित वस्तुओं का व्यापार होता था, व्यापार करने वालों को वणिक कहा जाता था। आयात सामग्री में खेती तथा उद्योग धंधों से उत्पन्न वस्तुएँ होती थीं। सिन्धु तथा परूएणी के प्रदेश के करघों से तैयार सूती तथा ऊनी माल उस समय सप्त सिन्धव के अन्य भागों में भेजा जाता था। अथर्ववेद में दूर्श (वस्त्र), पवस्त (चादर) तथा अजिन (चर्म) खरीदने का उल्लेख मिलता है।

डॉ.एस.एस.गौतम एवं डॉ.(श्रीमती) कमलेश माथुर

वेद ज्ञान एवं विज्ञान के प्राचीन स्रोत है। वेद शब्द का अर्थ ज्ञान ही है। ऐसा पूर्ण सत्य नहीं है। वेदः शब्द पर आदि उदात्त होगा, तब यह धन एवं ज्ञान दोनों का वाचक होगा। (नपुंसकलिंग) जिसे जाना जाय, जो जानने योग्य हो वह वेद है और जो वेद है वही ज्ञान है। वैदिक कालीन समाज को जितना ज्ञान था, वह उसने वेदों में संकलित किया। आम धारणा है कि वेदों में धर्म, मोक्ष, यज्ञों, अनुष्ठानों का उल्लेख मात्र है, जो पूर्णतः सत्य नहीं है, वेदों में मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के ज्ञान पर चिन्तन हुआ है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भारतीय संस्कृति के मूलाधार है। अर्थ के अभाव में उक्त पुरुषार्थों का कोई औचित्य नहीं रह जाता, क्योंकि सभी के मूल में अर्थ ही है इस शोधालेख में अर्थ को केन्द्रित कर वैदिक काल में हुए चिन्तन को रेखांकित करने का उपक्रम किया जा रहा है।

"अर्थते अनेन अर्थः" अर्थात् जिसे चाहा जाय, वह है अर्थ इसलिए पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ को शामिल किया गया। धर्म, काम, मोक्ष सभी अर्थशास्त्र है, क्योंकि अर्थशास्त्र का आरम्भ सन्तुष्टि से होता है और धर्म काम, मोक्ष में भी मनुष्य को सन्तुष्टि मिलती है। सन्तुष्टि इन्द्रिय की ही नहीं, अपितु मन और आत्मा की यह अवधारणा वैदिक है। **"शरीर माध्यं खलु धर्म साधनं"** आवश्यकता शरीर की होती है और सिद्धि शरीर से होती है, वैदिक चिन्तन में ऋषि देवताओं की स्तुति करते हुए धन, गाय देने की ही तो बात करते हैं। वैदिक काल में अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि थी। कृषि के साथ साथ वैदिक आर्य पशुपालन, व्यापार, उद्योग धन्धे एवं अन्य कार्य भी किया करते थे।

कृषि :

वैदिक आर्यों के आजीविका के कृषि एवं पशुपालन प्रधान साधन थे। वह कृषिकला से भली– भाँति परिचित होने के साथ अन्न की विभिन्न किस्मों से भी परिचित थे। उस समय कृषि कार्य को श्रेष्ठतम माना जाता था। तभी वैदिक ऋषि जुआड़ी को जुआँ छोड़कर कृषि कार्य करने की कहता है।

"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व" (ऋ 10/34/7)

ऋग्वेद के अनुसार अश्विनी ने सर्वप्रथम आर्यों को हल द्वारा बीज बोने की कला सिखलाई।

"दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः"

(ऋ 8/22/6)

"यवं वृकेणाश्विना वपन्तेशं दुहन्ता मनुषाय दरवा"

(ऋ 1/117/27)

बीज बोने से लेकर सिंचाई की व्यवस्था, खाद की व्यवस्था एवं अन्न को भूसे से अलग करने तक की विधियों का उल्लेख वेदों में होता है। गाय के गोबर की खाद का उपयोग आर्य लोग किया करते थे। कृषि कार्य वैश्य लोग किया करते थे। गोबर की खाद के लिए "करीष" शब्द का प्रयोग वेदों में हुआ है। सिंचाई के लिए कुएँ खोदकर एवं नदियों और जलाशयों से पानी की व्यवस्था की जाती थी।

या आपो दिव्य उत याः स्रवन्ति।
सनित्रि मा उत वा याः स्वयंजाः।। (ऋ 7/49/2)

खेतों की जुताई हल से होती थी, फसल पक जाने पर हँसुआ से काटते थे तथा पुलियों (पर्ष) में बांधते थे तथा खलियानों में लाकर भूमि पर माड़ते थे, जिससे अनाज डण्टल से अलग हो जाता था। शतपथ में कर्षण (जोतना), वमना (बोना) लवन (काटना) तथा मर्दन (माड़ना) चार ही शब्दों में कृषि कार्य की पूरी प्रक्रिया का वर्णन कर दिया। बोए जाने वाले अनाजों के नाम मन्त्रो में मिलते हैं। ब्रीहि (धान), यव् (जौ), मुद्ग (मूँग), माश (उड़त), गोधूम (गेहूँ), नीवार (जंगली घास), प्रियंगु, मसूर, श्यामाक (सांवां), तिल इन अनाजो के नाम

शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया (मध्यप्रदेश)

ऋग्वेद में नहीं मिलते, अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है।

अनाज बोने की भिन्न– भिन्न ऋतुओं का वर्णन तैतिरीय संहिता 7/2/10/2 में किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि आज भी बीज बोने का समय उसी पर आधारित है, जो हेमन्त में बोया जाता था और ग्रीश्म काल में पक जाता था। अर्थतन्त्र का मूलाधार कृषि होने के कारण लोक में भी कहावत प्रचलित थी, जो आज भी अतीत के स्वरुप को दर्शाती है **"उत्तम खेती, मध्यम वन्ज, अधमचाकरी, भीख निदान।"** अर्थात् कृषि कार्य उत्तम है, व्यापार मध्यम, नौकरी को अधम (तीसरा) स्थान प्राप्त था तथा अन्त में उदर – पोषण का माध्यम भीख को बताया गया।

वेद में क्षेत्रपति नामक देवता का उल्लेख मिलता है, जिसकी स्वतंत्र सत्ता थी, उससे खेती की सम्पन्नता के लिए प्रार्थना की जाती थी। इसका वर्णन ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के सत्तानवे सूक्त में उपलब्ध होता है–

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।।
(ऋ 4/97/7)

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं
शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः
शुनासीरा शुनमस्मासु धत (ऋ 4/97/9)

हमारे फाल सुखपूर्वक पृथ्वी का कर्षण करे हलवाहे (कीनाश) सुखपूर्वक बैलों से खेत जोते। मेघ मधु तथा जल से हमारे लिए सुख बरसाए तथा भुनासीर हम लोगों में सुख उत्पन्न करें।

पशुपालन :

वैदिक युग में कृषि के साथ – साथ पशुपालन जीवन निर्वाह का प्रधान साधन था। पशुपालन में प्रमुख रूप से गौ पालन ही था। बैलों से खेतों की जुताई होती थी, गाय का दूध भोजन में घी, खीर एवं विभिन्न रूपों में काम आता था। व्यक्ति की सम्पन्नता का मापन गायों की संख्या से लगाया जाता था। यज्ञों में गाय दक्षिणा के रूप में दी जाती थी। इस में मुद्रा का चलन कम मात्रा में था, वस्तुओं के आदान– प्रदान में मूल्य निर्धारण का काम गाय के रूप में होता था। ऋग्वेद के एक मंत्र में वामदेव ऋषि का कथन है कि कौन मनुष्य ऐसा है, जो मेरे इन्द्र (इन्द्र की मूर्ति) को दस गायों से खरीद रहा है –

***क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः* (ऋ 4/24/10)**

अन्य मन्त्र में सौ हजार या दस हजार गायें इन्द्र को खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं मानी गई–

महे चन त्वामाद्रिवः परा शुल्काय देयाम्
न सहसाय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामय।
(ऋ 8/1/5)

इस प्रकार खेती, भोजन तथा द्रव्य विनिमय का मुख्य साधन होने के कारण गाय, वैदिक आर्यों के लिए नितान्त उपादेय तथा आवश्यक पशु था। वैदिक कालीन समाज का कृषि कार्य, पशुपालन के अतिरिक्त अन्य उद्यमों से भी अर्थोपर्जान होता था। लघु एवं कुटीर उद्योंगो के रूप में बढ़ई (तक्षम), लोहार (कर्मार), वैद्य (भिषक) स्तोत्र बनाने वाले कारू कुम्हार (कुलाल), रथ बनाने वाले (रथकार) मल्लाह (कैवर्त, निशाद) तथा बुनकर (वाय) आदि का उल्लेख वेदों में कई जगह हुआ है।

***उतस्म ते परूष्ण्यामूर्णा बसत शुन्ध्यवः* (ऋ 5/52/9)**

व्यापार :

वेदकालीन समाज पूर्ण रूप से आर्थिक क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन पर ही निर्भर था। ऐसा कहना ठीक न होगा, यद्यपि यह बात पूर्णतः सत्य है कि मानव सभ्यता का विकास अधिक नहीं हुआ था तथापि वेदकालीन आर्यों को व्यापार का भी ज्ञान था और व्यापार के माध्यम से उन्होने धन कमाना सीख लिया था। वैदिक काल में अर्थव्यवस्था का नियोजन व्यापार के माध्यम से भी होता था। कृषि उत्पात देश में निर्मित वस्तुओं का व्यापार होता था, व्यापार करने वालों को वणिक् कहा जाता था। आयात सामग्री में खेती तथा उद्योग धन्धों से उत्पन्न वस्तुयें होती थीं। सिन्धु तथा परूएणी के प्रदेश के करघों से तैयार सूती तथा ऊनी माल उस समय सप्त सिन्धव के अन्य भागों में भेजा जाता था। अथर्ववेद में दूर्श (वस्त्र) पवस्त (चादर) तथा अजिन (चर्म) खरीदने का उल्लेख मिलता है। (अथर्ववेद 4/7/6)

व्यापार स्थल एवं समुद्र दोनों मार्गों से होता था। यद्यपि पाश्चात्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं उनके मत में वेदकालीन आर्यों को समुद्र की जानकारी नहीं थी, लेकिन शोध के बाद पता चलता है कि ऋग्वेदकालीन समाज न केवल समुद्र से परिचित था, बल्कि जहाज एवं नाव का भी प्रचलन उस समय के लोगों में था, जिसके माध्यम से उनका यातायात एवं व्यापार होता था। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इसका उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में साधारण नावों के अतिरिक्त सौ डाड वाली (शतारित्रा) बड़ी नाव का स्पष्ट उल्लेख है। उसके पंख (पतत्रि) भी कह गये है, वहां पंख से आशय वालों से है। नासत्यौ (अश्विन) के अनुग्रह से शतारित्र नाव पर चढ़ कर समुद्र यात्रा करने वाले तुंग–तुंग भुज्यु के उद्धार का उल्लेख ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में है। जान पड़ता है कि देवों ने भुज्यु को समुद्र के बीच जहाज में डूबने से बचाया था। वरूणदेव की स्तुति में शुनःशेप ऋषि का कहना है कि आकाश में जाने वाले पक्षियों के मार्ग को ही नहीं जानते अपितु समुद्र पर चलने वाले नावों के मार्ग से भी परिचित है। इन निर्देशों से ऋग्वेदकाल में ही वैदिक आर्यों के समुद्र से परिचित होने तथा जहाजों द्वारा उनके उसे पार करने के उद्योग का भी भली–भाँति पता चल जाता है। समुद्र मार्ग से व्यापार होने के पुष्ट प्रभाव ऋग्वेद में मौजूद हैं, कुछेक इस प्रसंग में उल्लेखित किए जायेंगे :

1 *शतरित्रां नावमातस्थिवांसम्।* **(ऋ 1/11/615)**

2 *युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईकृतम्।*
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये क तम्।।
(ऋ 10/143/5)

3 *वेदा वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्, वेद नावः समुद्रियः*
(ऋ 1/25/7)

4 अभीवृतं कृशनैर्विश्ररूपं हिरण्यशम्भ्यं यजतो बृहत्तम्।
(ऋ 1/35/4)

आर्यजन मोती से भली–भाँति परिचित थे। ऋग्वेद में मुका का नाम है–(कृशन) जिससे सविता के रथ को अलंकृत किए जाने का उल्लेख है। घोड़ों के अलंकरण के लिए मोतियों का प्रयोग होता था, ऐसे अलंकृत घोडों को कृशनावन्त कहते थे। अथर्ववेद (4/10/1,3) मोती पैदा करने वाले ताबीज बनाने के काम में प्रयुक्त होते थे। मोती दक्षिण भारत के समीपस्थ मार्ग से आकर इस मूल्यवान वस्तु को खरीदते थे।

सिक्के एवं ऋण :

वैदिक काल में ऋण लेने की भी प्रथा थी, बहुशः ऋण जुआं खेलने के अवसर पर लिया जाता था। ऋण चुका देने के लिए ऋग्वेद में **"ऋणं सैनयति"** वाक्य का प्रयोग मिलता है, ऋण न चुकाने का परिणाम बुरा हुआ करता था। द्यूत में ऋण न चुकाने पर जन्म भर दासता स्वीकार करना पड़ती थी। पूर्वजों द्वारा लिए गये ऋण उनके वंशजों को चुकाने पड़ते थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वरूण की इस प्रकार स्तुति है–

पर ऋण सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यक तेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नू भूयसीरूषास आ नो जीवान् वरूणतामुशधि।।

हे वरूण ! पूर्वजों द्वारा लिये गये ऋणों को हटा दीजिए तथा मेरे द्वारा लिए गए ऋणों को भी दूर कर दीजिए। दूसरों के द्वारा उपार्जित धन या ऋण से में जीवन निर्वाह करना नहीं चाहता, बहुत सी उषाएँ मेरी उषाएँ ही नहीं है। आप आज्ञा दीजिए और उन उशाओं में मुझे जीवित रखिये।

यह मन्त्र ऋणकर्ता की गहरी मानसिक वेदना तथा चिन्ता को प्रकट करता है। पणि लोग उस काल में व्यापार के लिए विशेष प्रसिद्ध थे और वे ऋण दिया करते थे, परन्तु व्याज बहुत अधिक खाते थे। इसलिए ऋग्वेद में वेकनाट कहे गये हैं, निरूक के अनुसार वेकनाट सूद खोरों को कहते है वे अपने रूपयों का दुगुना बनाने की कामना करते थे –

"वेकनाटाः खलु कुसोदिनो भवन्ति द्विगुण कारिणों
वा द्विगुणदायिनो वा द्विगुण कामयन्ते इति वा"

(निरूक 6/27)

व्यापार के लिए विनिमय कार्य के निमित्त गाय की महती उपयोगिता थी, परन्तु किसी प्रकार के सिक्का के का भी चलन उस समय अवश्य था। इसके अनेक प्रमाण वेदों में मिलते हैं।

❁❁